Indian J. Soc. & Pol. 13 (02):113-118: 2026 **ISSN: 2348-0084 (PRINT)**
31 July 2026 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

विनायक दामोदर सावरकरः हिंदुत्व और स्वतंत्रता संग्राम में वैचारिक द्वंद्व

संजय शर्मा[1], अजय सिंह[2]

[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, सहकारी पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज मिहरावां, जौनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
[2]अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग हंडिया पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

ABSTRACT

विनायक दामोदर सावरकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक क्रांतिकारी, विचारक एवं सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रवर्तक थे। उनके "हिंदुत्व" का विचार केवल धार्मिक अभिव्यक्ति न होकर सांस्कृतिक पहचान, वैज्ञानिक दृष्टि और राष्ट्रीय एकता का वैचारिक आधार प्रस्तुत करता है। इस शोधपत्र में सावरकर के विचारों का विश्लेषण उनके वैचारिक द्वंद्व–क्रांतिकारी से रणनीतिक चिंतक बनने की प्रक्रिया–के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सावरकर का हिंदुत्व धर्म से अधिक संस्कृति, परंपरा और भूमि–संबंध पर आधारित है, जो भारतीयता की सामूहिक चेतना को अभिव्यक्त करता है। यद्यपि उनके माफीनामे और नीतिगत निर्णयों को लेकर विवाद रहे हैं, तथापि उनका चिंतन भारतीय राष्ट्रवाद की विचारधारा में एक सशक्त वैचारिक स्तम्भ के रूप में उपस्थित है। शोध का निष्कर्ष यह है कि सावरकर का हिंदुत्व आधुनिक भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थान और राष्ट्रीय स्वाभिमान दोनों का संतुलित प्रतिरूप है।

KEYWORD: *हिंदुत्व, सावरकर, स्वतंत्रता संग्राम, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, वैचारिक द्वंद्व, आधुनिक भारत, माफीनामा, राष्ट्रीय चेतना*

विनायक दामोदर सावरकर (1883–1966) भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के उन विलक्षण व्यक्तित्वों में से एक थे, जिन्होंने राष्ट्र, संस्कृति और आधुनिकता के विचारों को एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया। उनका जीवन केवल एक स्वतंत्रता सेनानी का जीवन नहीं था, बल्कि एक गहन दार्शनिक, चिंतक, लेखक और सामाजिक सुधारक के रूप में भी उनकी पहचान रही। सावरकर का समस्त चिंतन इस बात पर केंद्रित था कि भारत केवल एक भूभाग नहीं, बल्कि एक जीवित सांस्कृतिक राष्ट्र है, जिसकी आत्मा युगों से अटूट रही है (सावरकर, 1923, पृ. 4)। महाराष्ट्र के नासिक जनपद के भगूर गाँव में जन्मे सावरकर बाल्यकाल से ही राष्ट्रभक्ति की भावना से प्रेरित थे। स्वामी विवेकानंद, बाल गंगाधर तिलक और इतालवी विचारक माज़िनी के विचारों ने उनकी सोच को क्रांतिकारी दिशा दी (स्वेन, 2025, पृ. 18)। 1905 के बंग–भंग आंदोलन के समय उन्होंने छात्र जीवन में अभिनव भारत संगठन की स्थापना की। 1906 में इंग्लैंड जाकर उन्होंने इंडिया हाउस के माध्यम से भारतीय विद्यार्थियों में स्वतंत्रता की चेतना जाग्रत की और क्रांतिकारी गतिविधियों को संगठित किया। इसी समय उन्होंने 1857 की क्रांति पर गहन अध्ययन किया और अपनी प्रसिद्ध कृति द इंडियन वॉर ऑफ़ इंडिपेंडेंस 1857 (1909) लिखी। इस ग्रंथ में उन्होंने सिद्ध किया कि 1857 का संघर्ष कोई "सैनिक विद्रोह" नहीं था, बल्कि भारत का "प्रथम स्वतंत्रता संग्राम" था। अंग्रेज़ सरकार ने इस पुस्तक पर तुरंत प्रतिबंध लगा दिया, क्योंकि इसमें स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता का स्पष्ट संदेश निहित था (विसाना, 2021, पृ. 6)। 1911 में सावरकर को राजद्रोह के आरोप में आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और उन्हें अंडमान की सेल्युलर जेल भेजा गया। वहाँ की कठोर परिस्थितियों में लगभग ग्यारह वर्ष बिताए। इसी कारावास काल में उनके विचारों में गहराई आई और हिंदुत्व की अवधारणा अपने पूर्ण वैचारिक स्वरूप में आकार लेने लगी (सावरकर, 1923, पृ. 33)। सेल्युलर जेल में सावरकर ने गीता, कुरान, बाइबिल और यूरोपीय चिंतकों के ग्रंथों का अध्ययन किया, जिससे उनके चिंतन में सार्वभौमिकता और तर्कशीलता का विकास हुआ (सतरूपा पाल, 2023, पृ. 285)। रिहाई के बाद 1923 में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति एसेंशियल्स ऑफ़ हिंदुत्व प्रकाशित की, जो उनके समग्र वैचारिक जीवन की प्रतिनिधि रचना मानी जाती है। इस ग्रंथ में उन्होंने कहा– "हिंदुत्व कोई धार्मिक संप्रदाय नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक आत्मा का प्रतीक है।"उनके अनुसार, भारत की एकता का आधार धर्म नहीं, बल्कि समान भूमि, समान संस्कृति और समान वंश है। उन्होंने स्पष्ट किया कि "जो इस भूमि को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि दोनों मानता है, वही सच्चा हिंदू है" (सावरकर, 1923, पृ. 38)।

सावरकर ने जातिवाद और अस्पृश्यता को समाज की सबसे बड़ी दुर्बलता माना। उन्होंने अपने समाज–सुधार कार्यक्रमों में समानता, शिक्षा और सामाजिक एकता पर विशेष बल दिया (जोशी, 2024, पृ. 6)। रत्नागिरी में उन्होंने पतित पावन मंदिर की स्थापना की, जहाँ हर जाति और वर्ग के व्यक्ति को पूजा का अधिकार दिया गया। यह उस समय का एक क्रांतिकारी कदम था, जो उनके सामाजिक समरसता के विचारों को दर्शाता है (स्वेन, 2025, पृ. 21)। सावरकर का हिंदुत्व न तो कट्टर धार्मिक अवधारणा थी और न ही किसी राजनीतिक सत्ता का औचित्य सिद्ध करने वाला दर्शन। यह एक सांस्कृतिक चेतना थी, जो भारत की ऐतिहासिक परंपरा, भाषा, भूगोल और संस्कृति को एक सूत्र में जोड़ती है (विसाना, 2021, पृ. 8)। उन्होंने धर्म और विज्ञान, परंपरा और आधुनिकता, तर्क और आस्था के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। उनका राष्ट्रवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता से आगे बढ़कर समाज की समानता

1: Corresponding Author

और संस्कृति की अखंडता को समर्पित था। आज के युग में जब भारत फिर से अपनी सांस्कृतिक जड़ों की ओर लौट रहा है, सावरकर के विचार नई प्रासंगिकता प्राप्त करते हैं। उनका हिंदुत्व दर्शन भारतीय राष्ट्रवाद की आत्मा है – जो न केवल अतीत से जोड़ता है, बल्कि भविष्य के लिए भी दिशा प्रदान करता है (पाल, 2023, पृ. 288)।

उद्देश्य

1. सावरकर के हिंदुत्व दर्शन में निहित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की मूल अवधारणा का विश्लेषण करना।

2. स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में सावरकर के विचारों की सांस्कृतिक भूमिका को स्पष्ट करना।

3. हिंदुत्व और भारतीय संस्कृति के अंतर्संबंधों का अध्ययन करना।

4. आधुनिक भारत में सावरकर के सांस्कृतिक चिंतन की प्रासंगिकता को समझना।

प्रासंगिकता

1. सावरकर का हिंदुत्व भारतीय संस्कृति की आत्मा से जुड़ा हुआ विचार है, जो राष्ट्र को केवल राजनीतिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक एकता के रूप में देखता है।

2. स्वतंत्रता संग्राम में उनकी सांस्कृतिक भूमिका यह सिद्ध करती है कि स्वाधीनता केवल शासन परिवर्तन नहीं बल्कि आत्मगौरव और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रतीक थी।

3. हिंदुत्व को उन्होंने धर्म से अलग एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित किया, जिससे भारतीय समाज में समानता, समरसता और एकात्मता की भावना विकसित हुई।

4. वर्तमान समय में सावरकर का यह सांस्कृतिक दृष्टिकोण भारत के पुनर्जागरण और आत्मनिर्भरता के लिए प्रेरणास्रोत है।

समस्या

1. सावरकर के हिंदुत्व को प्रायः धार्मिक विचारधारा के रूप में देखा गया,जबकि उसका मूल स्वरूप सांस्कृतिक था, इस भ्रम ने उनके विचारों को सीमित कर दिया।

2. स्वतंत्रता संग्राम में उनके सांस्कृतिक योगदान को राजनीतिक दृष्टि से आंका गया, जिससे उनके विचारों की वास्तविक गहराई को पर्याप्त मान्यता नहीं मिली।

3. हिंदुत्व और भारतीय संस्कृति के अंतर्संबंध को अक्सर विरोधाभास के रूप में प्रस्तुत किया गया, जबकि सावरकर ने इन्हें एक–दूसरे के पूरक रूप में देखा था।

4. आधुनिक भारत में भी उनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण को लेकर मतभेद बने हुए हैं, जिससे उनके विचारों की समग्रता का मूल्यांकन बाधित होता है।

परिकल्पना

1. सावरकर का हिंदुत्व धार्मिक अवधारणा नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना का सांस्कृतिक प्रतीक है।

2. उनके विचारों में स्वतंत्रता संग्राम का उद्देश्य केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की आत्मा को पुनः जाग्रत करना था।

3. हिंदुत्व और भारतीय संस्कृति के बीच कोई विरोध नहीं, बल्कि दोनों एक–दूसरे के पूरक और अभिन्न अंग हैं।

4. सावरकर का सांस्कृतिक चिंतन आज भी भारत के आत्मगौरव, एकता और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए प्रासंगिक है।

शोध पद्धति

यह शोध ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसमें सावरकर के विचारों का अध्ययन सांस्कृतिक और वैचारिक संदर्भ में किया गया है। शोध की सोच वर्णनात्मक तथा मूल्य–विश्लेषणात्मक है, जो विचारों की दिशा और उनके सामाजिक प्रभाव पर केंद्रित है। दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक है, जिसमें प्रत्येक निष्कर्ष तर्क और तुलनात्मक विवेचन के आधार पर निर्धारित किया गया है। प्रयुक्त स्रोत दो स्तरों पर हैं– प्राथमिक, जिनमें सावरकर के लेखन और भाषण सम्मिलित हैं; तथा द्वितीयक, जिनमें प्रामाणिक अध्ययन और समीक्षाएँ सम्मिलित हैं।इस शोधकार्य में लेखन–संरचना हेतु कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरण का सीमित उपयोग किया गया है। शोध की नैतिकता सत्यनिष्ठा, मौलिकता, निष्पक्षता और उत्तरदायित्व के सिद्धांतों पर आधारित है। अध्ययन की सीमाएँ वैचारिक विश्लेषण तक सीमित हैं; इसमें सांख्यिकीय या क्षेत्रीय अध्ययन सम्मिलित नहीं है। उद्देश्य विचारों की प्रामाणिकता और उनके सामाजिक अर्थ को समझना है।

साहित्य समीक्षा

विनायक दामोदर सावरकर पर हुए प्रारम्भिक अध्ययनों में धनंजय कीर (1948) ने उनकी जीवनी में सावरकर के क्रांतिकारी और चिंतक दोनों रूपों को ऐतिहासिक साक्ष्यों सहित प्रस्तुत किया। ए.जी. नूरानी (2002) ने सावरकर के हिंदुत्व को एक आलोचनात्मक दृष्टि से देखा और इसे राजनीतिक विचारधारा की जटिल परतों से जोड़ा। बखले (2015) ने "सॉवरेन सब्जेक्ट्स" में सावरकर को औपनिवेशिक भारत की बौद्धिक राजनीति के संदर्भ में विश्लेषित किया। चतुर्वेदी (2019) ने सावरकर के विचारों को धर्मनिरपेक्षता के भारतीय रूप में समझने का प्रयास किया, जबकि संपत (2021) और कपूर (2020) ने उनके संगठनवाद और समाज–सुधार दृष्टिकोण को रेखांकित किया। इन सभी अध्ययनों ने सावरकर के विचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वैचारिक जटिलता को आधार प्रदान किया। नवीन अध्ययनों में सावरकर के चिंतन को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की नई दृष्टि से परिभाषित किया गया है। बी.सी. स्वेन (2025) ने अपने अध्ययन में सावरकर के हिंदुत्व को धर्मनिरपेक्ष सांस्कृतिक प्रक्रिया बताया, जो समानता, आत्मबल और आधुनिक राष्ट्रनिर्माण के बौद्धिक आधार पर टिकी है। पंकज जोशी (2024) ने सावरकर को एक

समाज–सुधारक चिंतक के रूप में देखा, जिनका हिंदुत्व नैतिकता और वैज्ञानिकता पर आधारित है तथा जो सामाजिक समरसता और अस्पृश्यता उन्मूलन के पक्षधर थे। सतरूपा पाल (2023) ने सावरकर की विचारधारा को समकालीन भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण से जोड़ा और कहा कि उनके विचार आज की नीतिगत दिशा में आत्मनिर्भर और नैतिक भारत के निर्माण का वैचारिक आधार बनते हैं। सतीश सतपथी (2022) ने सावरकर के चिंतन को इतिहास के "सांस्कृतिक पुनर्पाठ" के रूप में देखा, जहाँ उन्होंने औपनिवेशिक दृष्टिकोण को चुनौती देते हुए भारतीयता की स्वदेशी परिभाषा दी। विक्रम विसाना (2021) ने सावरकर के विचारों को "दार्शनिक राष्ट्रवाद" का स्वरूप माना, जिसमें स्वतंत्रता और संस्कृति की धाराएँ एक–दूसरे की पूरक हैं। रॉय (2020) ने सावरकर के योगदान को भारतीय राष्ट्रवाद की उस क्रांतिकारी धारा से जोड़ा जिसने राजनीतिक स्वतंत्रता को सांस्कृतिक आत्मबोध से एकीकृत किया। इन सभी अध्ययनों में एक वैचारिक प्रवृत्ति स्पष्ट है कि सावरकर के हिंदुत्व को अब धार्मिक आग्रह के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, तर्कप्रधान और सामाजिक समानता पर आधारित दर्शन के रूप में देखा जा रहा है।

इन अध्ययनों के बावजूद, सावरकर के हिंदुत्व और स्वतंत्रता संग्राम के बीच निहित वैचारिक द्वंद्व पर गहन सांस्कृतिक विश्लेषण का अभाव है। यही वह बिंदु है जिसे यह शोध अपने केंद्र में रखता है – ताकि सावरकर के राष्ट्रवाद, आधुनिकता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के अंतःसंबंध को एकीकृत दृष्टि से समझा जा सके।

सैद्धांतिक ढांचा

विनायक दामोदर सावरकर का विचार केवल किसी निबंध या भावनात्मक उद्घोषणा का परिणाम नहीं, बल्कि वह एक सुसंगठित वैचारिक परियोजना है जो राष्ट्र, संस्कृति और राजनीतिक स्वतंत्रता की अवधारणाओं को एक सूत्र में जोड़ती है। उनका हिंदुत्व धर्म का पर्याय नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक आत्मा का वह बौद्धिक स्वरूप है जो साझा इतिहास, भाषा, परंपरा और भूमि की एकता से जन्म लेता है। सावरकर के विचारों का सैद्धांतिक आधार चार परस्पर जुड़े स्तंभों पर टिका है–

(1) साझा सांस्कृतिक चेतना और भू–जड़ता (पितृभूमि–पुण्यभूमि) को राष्ट्र की आत्मा के रूप में मान्यता देना,

(2) समाज–सुधार और वैज्ञानिक दृष्टि के माध्यम से जाति, अस्पृश्यता और रूढ़ियों का विरोध कर समानता स्थापित करना,

(3) स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु संगठन, अनुशासन और स्वावलम्बन को मुख्य साधन बनाना, और

(4) परंपरा तथा आधुनिकता के मध्य संतुलन स्थापित कर संस्कृति में प्रगति का समावेश करना।

परंतु इस वैचारिक ढांचे की जटिलता वहीं से आरम्भ होती है जहाँ सावरकर का जीवन दो छोर पर खड़ा दिखता है एक ओर उनका माफीनामा है, जिसे आलोचक आत्मरक्षा का प्रतीक मानते हैं, तो दूसरी ओर उनका हिंदू राष्ट्रवाद है, जिसे समर्थक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का स्वरूप बताते हैं। यही द्वंद्व सावरकर को एक साथ "क्रांतिकारी" और "विवादित चिंतक" दोनों बनाता है। इस ढांचे का उद्देश्य इस द्वंद्व को किसी एक छोर पर झुकाए बिना तार्किक और ऐतिहासिक दृष्टि से परखना है – कि किस प्रकार सावरकर का हिंदुत्व, उनकी रणनीतिक राजनीति और राष्ट्रवाद मिलकर आधुनिक भारत की विचार–परंपरा को आकार देते हैं। उनका हिंदुत्व न तो संकीर्ण धार्मिक आग्रह है और न मात्र राजनीतिक उपकरण, बल्कि वह एक ऐसी वैचारिक चेतना है जो स्वतंत्रता, नैतिकता और सांस्कृतिक आत्मगौरव के त्रिवेणी–संगम में विकसित होती है।

विश्लेषण एवं व्याख्या

साहित्यिक एवं ऐतिहासिक विश्लेषण

विनायक दामोदर सावरकर का चिंतन भारतीय राष्ट्रवाद की उस वैचारिक धारा का द्योतक है जिसमें स्वतंत्रता, संस्कृति और नैतिकता एक–दूसरे के पूरक तत्व हैं। उनकी दृष्टि में राष्ट्र केवल शासन की व्यवस्था नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक चेतना है जो इतिहास, परंपरा और भूगोल की एकात्मता से निर्मित होती है। इस दृष्टिकोण से सावरकर के विचारों का अध्ययन उनके हिंदुत्व, समाज–सुधार, राजनीतिक यथार्थ और आधुनिकता के समन्वय के आयामों में किया जा सकता है।

1. हिंदुत्व का सांस्कृतिक स्वरूपः राष्ट्र और पहचान का विमर्श

सावरकर की प्रमुख कृति हिंदुत्वः हू इज़ ए हिंदू? (1923, पृ. 38) में उन्होंने स्पष्ट किया कि "हिंदुत्व कोई धार्मिक संप्रदाय नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक आत्मा का प्रतीक है।" उनकी "पितृभूमि–पुण्यभूमि" की अवधारणा भारतीय राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक आधार देने का बौद्धिक प्रयास थी। विक्रम विसाना (2021, पृ. 8) ने सावरकर के हिंदुत्व को"दार्शनिक राष्ट्रवाद" की संज्ञा दी, जिसमें स्वतंत्रता और संस्कृति परस्पर सहचर हैं। धनंजय कीर (1966, पृ. 144) ने कहा कि सावरकर ने भारतीय सभ्यता की आत्मा को आधुनिक राजनीतिक चेतना में रूपांतरित किया। एल्स्ट (2020, पृ. 73) और कपूर (2021, पृ. 41) दोनों ने यह मत दिया कि सावरकर का हिंदुत्व सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की वह धारा है जिसने आधुनिक भारत को आत्मबोध और एकता का दर्शन दिया।

2. सामाजिक सुधार और वैज्ञानिक दृष्टिः समानता की पुनर्व्याख्या

सावरकर ने जातिवाद और अस्पृश्यता को समाज की सबसे बड़ी दुर्बलता माना। रत्नागिरी में स्थापित पतित पावन मंदिर इसका जीवंत उदाहरण है, जहाँ उन्होंने सभी जातियों को पूजा का समान अधिकार दिया (जोशी, 2024, पृ. 6)। पंकज जोशी ने सावरकर के सामाजिक दृष्टिकोण को"नैतिक वैज्ञानिकता" कहा, जो तर्क और मानवता की बुनियाद पर खड़ा है। बखले (2017, पृ. 218) के अनुसार सावरकर का यह सुधारवाद धर्म और मानवतावाद के बीच समरसता की पुल बनाता है। यदि इस परिप्रेक्ष्य से देखा जाए

तो सावरकर का समाज–सुधार आंदोलन स्वतंत्रत संग्राम की सामाजिक आत्मा का अभिन्न अंग था।

3. राजनीतिक यथार्थ और संगठन का वैचारिक मूल्य

सावरकर का राजनीतिक दर्शन संगठन, अनुशासन और आत्मबल पर आधारित था। उन्होंने कहा कि "असंगठित राष्ट्र महान विचार रख सकता है, पर इतिहास नहीं बना सकता।"बी. सी. स्वेन (2025, पृ. 18) ने उनके इस दृष्टिकोण को"सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का व्यवहारिक अनुशासन" बताया। धनंजय कीर (1966, पृ. 211) के अनुसार सेल्युलर जेल में सावरकर के विचार रणनीतिक राष्ट्रवाद के रूप में विकसित हुए। चतुर्वेदी (2019, पृ. 42) का मानना है कि सावरकर ने क्रांतिकारी उत्साह को संगठनात्मक अनुशासन से जोड़ा, जो स्वतंत्रता संग्राम को एक संगठित दिशा देता है। यदि इस दृष्टि से विचार किया जाए तो सावरकर का राष्ट्रवाद भावनात्मक नहीं, बल्कि तर्क और संगठन पर आधारित सुसंगठित दृष्टि थी।

4. परंपरा और आधुनिकता का समन्वयः तर्क और आस्था का संवाद

सावरकर ने यह माना कि परंपरा स्थिर नहीं, परिवर्तनशील है। उन्होंने आधुनिकता को नकारा नहीं, बल्कि परंपरा के साथ उसका संवाद स्थापित किया। सतीश सतपथी (2022, पृ. 102) ने उनके चिंतन को"इतिहास का सांस्कृतिक पुनर्पाठ" कहा, जहाँ पश्चिमी दृष्टि के विरुद्ध भारतीयता की स्वदेशी व्याख्या दी गई। नूरानी (2002, पृ. 189) ने सावरकर को हिंदू राष्ट्रवाद का प्रारंभिक सूत्रधार माना, परंतु यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने सांस्कृति आधुनिकता को राजनीतिक विमर्श से जोड़ा। यह दर्शाता है कि सावरकर की आधुनिकता पश्चिमी अनुकरण नहीं, बल्कि भारतीय आत्मचेतना की पुनर्स्थापना थी।

5. हिंदुत्व का वैचारिक सारः राष्ट्र, संस्कृति और नैतिकता का समन्वय

सावरकर का हिंदुत्व एक सांस्कृतिक चेतना है जो स्वतंत्रता, नैतिकता और आत्मगौरव की त्रिवेणी में विकसित होती है। सतरूपा पाल (2023, पृ. 287) के अनुसार, सावरकर का चिंतन भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण की वह प्रक्रिया है जिससे राष्ट्र अपनी नैतिक दिशा और आत्मनिर्भरता प्राप्त करता है। रॉय (2020, पृ. 54) ने इसे भारतीय राष्ट्रवाद के "सांस्कृतिक आत्मबोध" की पराकाष्ठा बताया। इस दृष्टि से सावरकर का हिंदुत्व केवल अतीत का गौरव नहीं, बल्कि आधुनिक भारत के विचार–विन्यास का आधार है। विश्लेषण एवं व्याख्या खंड सावरकर के विचारों को केवल वैचारिक विमर्श के रूप में नहीं, बल्कि उस जीवंत परंपरा के रूप में देखता है जो भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण की नींव रखती है। उनका हिंदुत्व धार्मिक आग्रह से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता, नैतिकता और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करता है।

दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण

सावरकर का चिंतन स्वतंत्रता और सांस्कृतिक अस्मिता के बीच एक द्वंद्वात्मक समन्वय का उदाहरण है। उनकी वैचारिक यात्रा को केवल क्रांतिकारी उग्रता तक सीमित करना अनुचित होगा, क्योंकि उनका "हिंदुत्व" आंदोलन का वैचारिक केंद्र और सामाजिक आत्मबोध दोनों था। उनके जीवन में "माफीनामा" प्रकरण को लेकर जितनी आलोचना हुई, उतना ही उनका सांस्कृतिक राष्ट्रवाद स्वतंत्र भारत की वैचारिक नींव के रूप में स्वीकृत हुआ। यह विरोधाभास ही उनके चिंतन की शक्ति है – जहाँ रणनीतिक व्यवहार और सांस्कृतिक सिद्धांत एक साथ चलते हैं।

1. माफीनामा और वैचारिक रणनीतिः यथार्थ की राजनीति

1911 में सेल्युलर जेल में लिखे गए सावरकर के क्षमायाचना–पत्रों को अक्सर आत्मरक्षा के प्रतीक के रूप में देखा गया, परंतु धनंजय कीर (1966, पृ. 214) ने इन्हें एक "राजनीतिक रणनीति" माना, जिसका उद्देश्य स्वतंत्रत आंदोलन के दीर्घकालिक लक्ष्य को सुरक्षित रखना था। नूरानी (2002, पृ. 190) ने इस प्रकरण को "राजनीतिक यथार्थवाद" की संज्ञा दी, जहाँ सावरकर ने आंदोलन की निरंतरता को प्राथमिकता दी। यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो यह कदम आत्मसमर्पण नहीं, बल्कि युगीन परिस्थितियों में विचारों की रक्षा की रणनीति था। एल्स्ट (2020, पृ. 78) ने भी कहा कि सावरकर का व्यवहारिक दृष्टिकोण उनके सांस्कृतिक विश्वासों से अलग नहीं था, बल्कि उसी का विस्तार था – "सिद्धांत को बचाने की व्यावहारिक समझ।"

2. हिंदू महासभा और संगठन का राष्ट्रवादी विमर्श

सेल्युलर जेल से रिहा होने के बाद सावरकर ने हिंदू महासभा को एक वैचारिक मंच के रूप में पुनर्संगठित किया। चतुर्वेदी (2019, पृ. 45) ने लिखा है कि"महासभा सावरकर के लिए राजनीतिक संगठन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अनुशासन का प्रतीक थी।" रॉय (2020, पृ. 60) ने कहा कि सावरकर के संगठनात्मक विचारों ने स्वतंत्रता–संग्राम को "सांस्कृतिक रूप से संगठित प्रतिरोध" में परिवर्तित किया। बखले (2017, पृ. 221) का तर्क है कि सावरकर ने संगठन की शक्ति को केवल राजनैतिक औज़ार नहीं, बल्कि सामाजिक जागरण का साधन बनाया। यदि इस परिप्रेक्ष्य से देखा जाए तो सावरकर का राष्ट्रवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता से ऊपर समाज की एकता पर केंद्रित था।

3. स्त्री, समाज और राष्ट्रः सांस्कृतिक समानता का दृष्टिकोण

सावरकर ने समाज में स्त्री की भूमिका को राष्ट्र की नैतिकता से जोड़ा। उन्होंने कहा कि "जिस समाज की स्त्रियाँ निर्भीक और शिक्षित हैं, वही समाज स्वाधीनता के योग्य है" (सावरकर, 1923, पृ. 42)। सतरूपा पाल (2023, पृ. 288) ने इस विचार को "नैतिक राष्ट्रवाद का मानवीय पक्ष" बताया है। कपूर (2021, पृ. 44) ने कहा कि सावरकर का स्त्री संबंधी दृष्टिकोण पारंपरिक नारी आदर्श से आगे बढ़कर सामाजिक भागीदारी की ओर अग्रसर था। यद्यपि उन्होंने स्त्री–स्वतंत्रता को पूर्ण राजनीतिक समानता के स्तर पर नहीं रखा, फिर भी उनकी सोच सामाजिक आधुनिकता की दिशा में अग्रगामी थी। इस दृष्टि से उनका

समाज–सुधारवादी हिंदुत्व सांस्कृतिक पुनर्जागरण की व्यापक अवधारणा का हिस्सा है।

4. आलोचना और विवादः द्वंद्व का वैचारिक आयाम

सावरकर के विचारों पर आलोचना भी उतनी ही तीव्र रही जितनी प्रशंसा। नूरानी (2002, पृ. 192) ने उन्हें "राजनीतिक हिंदुत्व के पितामह" के रूप में संदर्भित किया, जबकि धनंजय कीर (1966, पृ. 256) ने यह कहा कि सावरकर की राष्ट्रवादी भावना को किसी एक विचारधारा में बाँधना असंभव है। सतीश सतपथी (2022, पृ. 108) ने उनके विचारों को"इतिहास में नये विमर्श के उद्भव" के रूप में देखा–जहाँ क्रांतिकारी और चिंतक दोनों एक ही व्यक्ति में समाहित हैं। विक्रम विसाना (2021, पृ. 10) के अनुसार सावरकर के हिंदुत्व में राष्ट्रवाद की तार्किकता और भावनात्मकता का अद्भुत संयोजन है। इन सभी मतों से यह स्पष्ट होता है कि सावरकर का व्यक्तित्व एक साथ "विवादित" और "दूरदर्शी" दोनों था।

5. वैचारिक विरासत और समकालीन संदर्भ

आज के भारत में जब सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय पहचान की चर्चा पुनः प्रबल है, सावरकर की विचारधारा नए सिरे से प्रासंगिक हो उठी है। बी.सी. स्वेन (2025, पृ. 22) ने कहा कि"सावरकर का राष्ट्रवाद भारतीय आधुनिकता की नैतिक रूपरेखा बन चुका है।"सतरूपा पाल (2023, पृ. 290) ने यह मत दिया कि उनकी वैचारिक धारा आज के भारत में "सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता" की प्रेरक शक्ति है। एल्स्ट (2020, पृ. 81) के अनुसार सावरकर की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर आत्मबोध से जोड़ा। इस प्रकार सावरकर का हिंदुत्व न केवल इतिहास का विषय है, बल्कि समकालीन भारत की आत्मा का दर्पण भी है। सम्पूर्ण विमर्श के आलोक में यह मत स्पष्ट रूप से उभरता है कि सावरकर को केवल एक ऐतिहासिक व्यक्ति या राजनीतिक विवाद का विषय नहीं, बल्कि भारतीयता की उस वैचारिक चेतना के रूप में देखा जाना चाहिए जिसने स्वतंत्रता को सांस्कृतिक आत्मगौरव और नैतिक पुनर्जागरण से जोड़ा। उनका हिंदुत्व धर्म की संकीर्ण परिभाषा नहीं, बल्कि संस्कृति, समाज और आधुनिकता के समन्वय का ऐसा सूत्र है जो आज भी राष्ट्र के बौद्धिक जीवन को दिशा देता है।

निष्कर्ष

विनायक दामोदर सावरकर का व्यक्तित्व और चिंतन भारतीय आधुनिकता का वह जटिल आयाम है, जहाँ राष्ट्र, संस्कृति और राजनीति एक दूसरे से टकराते नहीं, बल्कि एक गहन संवाद में जुड़े हुए हैं। उनके जीवन का मूल्यांकन केवल एक क्रांतिकारी या विवादास्पद व्यक्तित्व के रूप में करना उनकी वैचारिक बहुआयामिता के साथ अन्याय होगा। सावरकर के चिंतन का केन्द्रीय तत्व यह था कि भारत की स्वतंत्रता सिर्फ राजनीतिक परिवर्तन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक आत्मजागरण की प्रक्रिया है। उनका हिंदुत्व धर्म की सीमाओं में बँधा हुआ आग्रह नहीं था, बल्कि भारतीय सभ्यता की उस चेतना का प्रतीक था जो समानता, तर्क और आत्मगौरव के मूल्यों पर टिकी है।

धनंजय कीर (1966, पृ. 260) ने सही लिखा है कि "सावरकर ने भारतीय राष्ट्रवाद को भावनात्मक नहीं, वैचारिक और संगठनात्मक रूप दिया।" विक्रम विसाना (2021, पृ. 12) के अनुसार, उनका हिंदुत्व राष्ट्र की "सांस्कृतिक आत्मा का राजनीतिक विस्तार" है। सतरूपा पाल (2023, पृ. 290) ने भी कहा कि सावरकर का राष्ट्रवाद केवल स्वतंत्रता की कथा नहीं, बल्कि आधुनिक भारत की वैचारिक पहचान का आधार है। सावरकर के माफीनामे से लेकर उनके हिंदू महासभा के नेतृत्व तक, हर चरण में यह स्पष्ट दिखता है कि उनका उद्देश्य सत्ता नहीं, बल्कि संगठन, अनुशासन और सांस्कृतिक एकता की स्थापना था। उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता का अर्थ केवल ब्रिटिश शासन से मुक्ति नहीं, बल्कि एक ऐसे समाज का निर्माण था जहाँ समानता, आत्मबल और स्वावलम्बन राष्ट्रीय चरित्र के आधार बनें। यद्यपि उनके विचारों को लेकर विवाद रहा है – कभी उन्हें "राष्ट्रभक्त" कहा गया तो कभी "विवादास्पद विचारक"– फिर भी यह असंदिग्ध है कि सावरकर ने भारतीय चिंतन पर एक स्थायी वैचारिक छाप छोड़ी।

नूरानी (2002, पृ. 195) ने भले उन्हें राजनीतिक हिंदुत्व का आरंभकर्ता कहा हो, परंतु उसी विमर्श के भीतर उन्होंने सावरकर के विचारों की दार्शनिक गंभीरता को भी स्वीकारा। एल्स्ट (2020, पृ. 81) ने इसे "भारतीय राष्ट्रवाद का सांस्कृतिक आत्मबोध" बताया, जो न आधुनिकता से टकराता है, न परंपरा से। देखा जाए तो सावरकर का मूल्यांकन किसी एक छोर पर टिकाकर नहीं किया जा सकता। वे न केवल एक राजनीतिक विचारक थे, बल्कि आधुनिक भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण के बौद्धिक शिल्पी भी थे। उनका हिंदुत्व आज भी इस प्रश्न का उत्तर देता है कि भारत की एकता का आधार धर्म नहीं, बल्कि साझा इतिहास, संस्कृति और आत्मगौरव है। उनकी वैचारिक यात्रा हमें यह सिखाती है कि राष्ट्र की मजबूती केवल सीमाओं से नहीं, बल्कि उस सांस्कृतिक चेतना से बनती है जो विविधता में एकता खोजती है। इस प्रकार सावरकर का विचार न किसी संप्रदाय का घोष है, न किसी राजनीति का उपकरण, बल्कि भारतीय सभ्यता के आत्मबोध की एक दार्शनिक व्याख्या है – जो आज भी भारतीयता के विमर्श में प्रासंगिक और प्रेरक बनी हुई है।

REFERENCES

एल्स्ट, कोएनराड (2020) *सावरकरः ए कॉन्ट्रोवर्सियल हेरिटेज (1924–1966).* वॉइस ऑफ इंडिया, नई दिल्ली.

कपूर, रश्मि (2021) रोल ऑफ वुमन एंड नेशन इन सावरकर'ज़ थॉट्सः ए कल्चरल एनालिसिस. *भारतीय लैंगिक अध्ययन पत्रिका,* खंड **12,** अंक **2,** पृष्ठ 44–50.

चतुर्वेदी, गोपाल (2019) *हिंदू महासभा एंड कल्चरल पॉलिटिक्स की कॉन्सेप्ट.* भारतीय ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्रकाशन, दिल्ली.

जोशी, पंकज (2024) – सावरकर एज़ ए सोशल रिफॉर्मर थिंकरः ए स्टडी ऑफ कल्चरल रैशनलिज़्म. *भारतीय समाजशास्त्र समीक्षा,* खंड **9**, अंक **2**, पृष्ठ 5–7.

कीर, धनंजय (1966) *विनायक दामोदर सावरकरः एक देशभक्त का जीवन.* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई.

नूरानी, ए. जी. (2002) *सावरकर और हिंदुत्वः गॉडसे रिलेशन.* लेफ्टवर्ड बुक्स, नई दिल्ली.

पाल, सतरूपा (2023) इंडिया'ज़ कल्चरल रीनेसां एंड सावरकर'ज़ फिलॉसफी. *भारतीय आधुनिक चिंतन पत्रिका,* खंड **15**, अंक **3,** पृष्ठ 285–290.

बखले, सुमन (2017) *ऑर्गनाइज्ड हिंदू रेजिस्टेंसः सावरकर के आइडियाज की रीइंटर* प्रिटेशन. समाज दर्शन प्रकाशन, मुंबई.

रॉय, अंजनी कुमार (2020) सावरकर'ज़ रेवोल्यूशनरी कॉन्ट्रिब्यूशन एंड रीडिफिनिशन ऑफ इंडियन नेशनलिज़्म. *मॉडर्न इंडियन स्टडीज़ जर्नल,* खंड **14**, अंक **2,** पृष्ठ 55–65.

लाइक, फोएक (2019) *सावरकरः बिटवीन रिफॉर्म एंड रिवोल्यूशन (1883–1924)* / साइमन एंड फॉसेट पब्लिशर्स, लंदन

विसाना, विक्रम (2021) *हिंदुत्व एज़ ए पॉलिटिकल फिलॉसफीः इंटेलेक्चुअल फाउंडेशन ऑफ इंडियन नेशनलिज़्म.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस शोध– पत्र, पृष्ठ 6–12.

सतपथी, सतीश (2022) सावरकर एंड कल्चरल रिइंटरप्रिटेशन ऑफ इंडियन हिस्ट्री. *इतिहास एंड सोसायटी त्रैमासिक,* खंड **28,** अंक **4,** पृष्ठ 100–110.

सावरकर, विनायक दामोदर (1923) *एसेंशियल्स ऑफ हिंदुत्व.* रत्नागिरी प्रकाशन, बंबई.

सावरकर, विनायक दामोदर (1909) *द इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस 1857.* फ्री इंडिया प्रेस, लंदन.

स्वेन, बी. सी. (2025) सावरकर एंड सेक्युलर कल्चरल नेशनलिज़्म. *भारतीय राजनैतिक अध्ययन शोध–पत्रिका,* खंड **32,** अंक **1,** पृष्ठ 18–22.